योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई 283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष:57, अंक 5
अगस्त 2024

प्रकाशन तिथि: 01-08-2024
मूल्य-एक प्रति:35/-, वार्षिक 350/-
आजीवन (10 वर्ष) 1500/-

अमृतकण

शीलवृत्तविनीतस्य निगृहीतेन्द्रियस्य च।
आर्जवे वर्तमानस्य सर्वभूतहितैषिणः।।
प्रियातिथेश्च क्षान्तस्य धर्मार्जितधनस्य च।
गृहाश्रमपदस्थस्य किमन्यैः कृत्यमाश्रमैः।।

अर्थात् जो शील और सदाचार से विनीत है, जिसने अपनी इन्द्रियों को काबू में कर रखा है, जो सरलतापूर्वक वर्ताव करता है और समस्त प्राणियों का हितैषी है, जिसको अतिथि प्रिय है, जो क्षमाशील है, जिसने धर्म पूर्वक धन का उर्पाजन किया है–ऐसे गृहस्थ के लिए आश्रमों की क्या आवश्यकता है?

● ● ●

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथोदिव्यः स सुपर्णो गुरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।

सत् ब्रह्म एक ही है, मेधावी लोग उस एक सत् तत्व को ही इन्द्र, मित्र, वरूण और अग्नि आदि नामों से अभिहित करते हैं। सुन्दर पंख वाले तीव्रगामी गरूढ़ भी वे हीं हैं। उसी तत्व को यम, मातरिश्वा के नाम से भी कहते हैं। क्या वह तत्व (ब्रह्म) एक ही है या अनेक? नहीं, वह एक ही है और उसी एक तत्व के ही ये अनेक नाम और रूप है।

● ● ●

चित्रकर्म यथाऽनेकरंगैरुन्मील्यते शनैः।
ब्राह्मण्यमपि तद्वत् स्यात संस्कारैर्विधिपूर्वकैः।।

तूलिका के बार–बार फेरने से शनैः–शनैः जैसे चित्र अनेक रंगो से निखर उठता है, वैसे ही विधिपूर्वक संस्कारों के अनुष्ठान से ब्राह्मणत्व का विकास होता है।

● ● ●

संस्कृतस्य हि दान्तस्य नियतस्य यतात्मनः।
प्राज्ञस्यानन्तरा सिद्धिरिहलोके परत्र च।।

जिसके वैदिक संस्कार विधिवत् सम्पन्न हुए हैं, जो नियमपूर्वक रहकर मन और इन्द्रियों पर विजय पा चुका है, उस विज्ञ पुरूष को इहलोक और परलोक में कहीं भी सिद्धि प्राप्त होते देर नहीं लगती।

● ● ●

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र
श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 57
अंक–5

अगस्त
2024

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विषदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

बैकुण्ठलीलाप्रवरं मनोहरं
नमस्कृते देवगणैः परं वरम्।
गोपाललीलाभियुंत भजाम्यहं
गोलोकनाथं शिरसा नमाम्यहम्।।

(गर्ग भा 4/8)

अर्थात्

हे प्रभो! आप बैकुण्ठपुरी में सदा लीला में तत्पर रहने वाले हैं। आपका स्वरूप परम मनोहर है। देवगण सदा आपको नमस्कार करते हैं। आप परश्रेष्ठ हैं। गो–पालक की लीला में आपकी विशेष रूचि रहती है–ऐसे मैं आपका भजन करता हूँ। साथ ही आप गोलोकधिपति को मैं नमस्कार करता हूँ।

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spirtual values

संस्थापक:

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

संयुक्त सम्पादक:

डा0 विजय सिंह एवं दिनेश चन्द्र शर्मा

लेख की सूची

1. विशेष लेख– योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज 1
2. सम्पादकीय 9
3. श्री मद् भागवत में योग में चर्चा–डा. विजय सिंह 13
4. गुरू मेहरवान तो चेला पहलवान–श्री जगदीश राय बंसल 16
5. श्रद्धा और विश्वास–श्री अन्तूराम यादव 20
6. इशावास्योपनिषद–श्री पूर्ण पंत 25
7. नैतिकता ही नहीं मुक्ति ही लक्ष्य श्री स्वामी विवेकानन्द 31
8. प्रभुजी के नाम की शक्ति–डा. महेन्द्रप्रकाश गुप्ता 33

हमारा विशेष लेख-

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज

मनुष्य के अभ्युदय और निःश्रेयस का एकमात्र मार्ग योग साधना का मार्ग है। महाप्रभुजी का अव-तरण इसी मार्ग को प्रशस्त बनाने के प्रयोजन की सिद्धि के लिए हुआ। पढ़िए इसे प्रभु श्री गुरूदेव जी के इस लेख में।

-सं० सम्पादक

महाप्रभुजी का-

अवतरण और प्रयोजन

मनुष्य का जैसा आचरण अथवा चरित्र हुआ करता है। वैसा ही चरित्र और आचरण उस समाज और राष्ट्र का हुआ करता है, जिसमें वह जन्म लेता है, क्योंकि व्यक्ति, समाज और राष्ट्र इन तीनों का अभिन्न सा सम्बन्ध रहता है। व्यक्ति से समाज और समाज से राष्ट्र बना करता है। हमारे देश के पूर्वज मनीषियों और तत्ववेत्ताओं द्वारा रचित धर्म-शास्त्र और श्रुति, स्मृतियों आदि में भी व्यक्ति को चरित्रवान बनने-बनाने के आदेश एवं उपदेश ही मुख्य रूपेण पाये जाते हैं। वर्णाश्रम धर्म की नींव भी इसी सिद्धान्त को लेकर डाली कि व्यक्ति का उज्जवल चरित्र न केवल उसके अभ्युदय और निःश्रेयस कारण बने बल्कि इससे उसके समाज और राष्ट्र भी गौरवान्वित हों। पुरूषार्थ चतुष्टय यानी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की उपलब्धि भी चरित्र-गठन की प्रक्रिया को ही अपनाकर की जा सकती है, इसलिए दृढ़ता और निष्ठा से कठोर व्रत के रूप में इस सिद्धान्त पर आरूढ़ रहने का परामर्श मनुष्य को दिया गया है। ऐसे चरित्रवान, कर्त्तव्य-परायण, देवतुल्य महापुरूषों का उद्गम-स्थल

हमारा यह भू–खण्ड भारतवर्ष ही रहा है, क्योंकि ज्ञान–सूर्य की प्रथम किरण का उद्‌भव इसी वसुन्धरा पर हुआ है। इस विश्वास के आधार पर ही मानव स्मृति के आदि निर्माता महाराज मनु की यह उद–घोषणा जो उन्होनें अपनी स्मृति के प्रारम्भ में ही लिखी है, आज भी हमें अपने मूल रूप में पढ़ने को मिलती है। : यथा–

एतद् देशस्य प्रसूतस्य,
सकाशादग्र जन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरण
पृथिव्यां सर्व मानवः।।

अर्थात इस देश के अग्रजन्मा उज्जवल चरित्र वाले मनुष्य के चरित्र से ही सारे संसार के मनुष्य शिक्षा लेकर उसका अनुकरण करके अपने चरित्र का निर्माण करेंगे।

महाराज ! मनु का यह संकल्प कैसे पूरा हो? कैसे उज्जवल चरित्र और निर्मल छवि वाले पुरुष उत्पन्न हों, इसका विस्तार से वर्णन महाराज मनु ने ही अपनी स्मृति में किया है। भगवती श्रुति ने बहुत ही संक्षेप में चरित्रवान समाज के गठन की प्रक्रिया बताते हुए ही इसी प्रकार के सच्चरित्र मनुष्यों के निर्माण को विधि का उपदेश देते हुए कहा है–

"सं श्रुतेन समेमहिमा
श्रुतेन विराधसि।"

अर्थात् जब अपना जीवन श्रुति के अनुकूल बनायें, इसके विरूद्ध आचरण न करें। वेदों का ही अपर नाम श्रुति है। वेदानुकुल जीवन ही मनुष्य को देवत्व और अमरत्व प्रदान करने की क्षमता रखता है। इसी को हम यज्ञीय जीवन–महापुरूषों, ऋषियों, मुनियों और सिद्ध–योगियों का जीवन

भी की सकते हैं। इसके प्रतिकूल आचरण ही आसुरीजीवन कहा जाता है। जिस दैवी सम्पदा का वर्णन गीता में भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने किया है, उसमें भी वेद–स्मृति आदि के ही अनुसार जीवन निर्माण को अभ्युदय निःश्रेयस, समाधि लाभ या मोक्ष–प्रद प्राप्त करा देने वालों विद्या का ही संकेत है। जप–तप, पूजा, यम–नियम सभी साधनायें इस देवी जीवन व्यतीत करने वाली विद्या के अर्न्तगत आता है। जीवन का अन्तिम ध्येय मोक्ष अथवा परम–पद की प्राप्ति का मार्ग–इस सर्व सम्मत वैदिक विद्या के अनुसार जीवनचर्या बना लेने के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है। उपनिषदों के ऋषियों ने भी तो इसी अनुभूत सत्य के मार्ग का वर्णन करते हुए कहा है–

न अन्यपंथा विद्यते अयनाय।

इस मार्ग के अतिरिक्त दूसरा मार्ग नहीं है जो है भी वह अंधकार का मार्ग है, भटकाव का मार्ग है। वह मार्ग है जो हमें "असुर्यानाम ते लोकाः अन्धेन तमसाव्रता" जैसे अधम दुखालय पूर्ण लोको में ले जाकर पटक देगा, जहाँ से हमारा पुनः मनुष्य जैसे सुकृत लोकों में आना दुष्कर ही रहेगा। भगवान ने भी ऐसे प्रति–कूल विरोधी कंटकपूर्ण मार्ग पर न चलकर श्रेष्ठ–कल्याणकारी मार्ग पर चलने का उद्‌बोधन देते हुए एक तीन सूत्रीय सर्वोत्तम उद्‌बोधन हमें वेदों के द्वारा दिया है जो इस प्रकार हैं–

☆ तमसो मा ज्योतिर्गय।

☆ मृत्योर्मा अमृतं गमय।

☆ असतो मा सद्‌गमय।।

अर्थात है मनुष्य तू अंधकार से प्रकाश की ओर, असतु से सत् की ओर, मृत्यु से हट

कर अमृतत्व का वरण कर। इस वैदिक त्रिसूत्रीय सिद्धान्त को अवलम्बन बनाकर किस प्रकार, किस रूप में हम सब मानव वे मानव जो उत्तम संस्कार लेकर पैदा हुए हैं कैसे जीवन के ध्येय बिन्दु तक पहुंच पाने में सफल हों सकते हैं, इसके बहु-मूल्य सूत्र प्रस्तुत किये है, योग दर्शन में महर्षि पंतजलि ने। सर्वोत्तम जीवन निर्माण का अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति का श्रेष्ठतम मार्ग योग-मार्ग के अतिरिक्त और कोई हो ही नहीं सकता है। यही मार्ग है जो देश, काल जाति-भेद के बिना सबको समान रूप से आगे बढ़ने और अपनी ओर आने को प्रेरित करता है, व्यक्ति, समाज और राष्ट्र-निर्माण की इससे उत्तम योजना शायद ही कोई और हो। इसीलिए तो भगवान श्रीकृष्ण ने अपने सखा अर्जुन के माध्यम से अखिल विश्व को संदेश दिया है "तस्मात् योगी भवार्जुन।" अर्थात हे अर्जुन! तू योगी बन, बिना योगी बने तेरा कल्याण नहीं हो सकता। इतना ही नहीं, भगवान ने श्री मद् भगवत गीता में यह भी स्पष्टता से कह दिया है-

"योगी तो मेरी आत्मा ही होती है।"हमारे ऋषि-मुनियों की महत्वपूर्ण देने योगी-जीवन की पद्धति ही है, जिसे अपनाने और जानने के लिए आज भी भूमण्डल के निवासी योगआश्रमों की ओर दौड़े चले आ रहे हैं। स्वयं हमारे योगाश्रम 'सिद्धगुफा' सवांई में इग्लैण्ड अमेरिका, फ्रांस इटली आदि देशों से बहु-संख्यक युवक और युवतियों ने आकर योग-दीक्षा ग्रहक करके योगीयों के अनुष्ठान की आवश्यक शिक्षा प्राप्त कर अपने को कृतार्थ किया है। इन सभी ने हमारे आश्रम में लम्बे समय तक रहकर योग के यम-नियमों के अनुसार ही अपने जीवन को बनाने का अच्छा प्रयास भी किया है। योग शिक्षा ग्रहण करने के उद्देश्य से

इन सब का यहाँ आना–भारत के योगियों और योग विद्या की लोक–प्रियता का ही प्रमाण है। यह इस बात का भी प्रमाण है कि जीवन में शाश्वत शांति यदि किसी को पानी है तो उसे भारतीय योगियों की जीवन–प्रणाली को ही अपनाना होगा। यही वह ज्ञान है, जिसे पाकर फिर कुछ पा लेना शेष नहीं रह जाता और यही वह ज्ञान है, जिसके ह्रास हो जाने पर धर्म की ग्लानि और अधर्म का उत्थान होने लगता है। तब ऐसी दशा में धर्म की स्थापना और अधर्म के विनाश के लिए भगवान को किसी न किसी रूप में अवतरित होना पड़ता है। 'तदात्मान सृजाम्यहं'' हमारे इस कथन का साक्षी है। जिसे योगयोगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है–

धर्म के अभ्युत्थान तथा धर्म के मार्ग से अलग रहकर कुमार्ग पर चल पड़ने वाले जन समूह को सही दिशाबोध देने की आवश्यकतानुसार समय–समय पर वे मुरात्मा और सिद्ध योगी पुरूष भी, जो क्लेश–कर्म–विपाक से बिल्कुल अछूते रहकर अगाध ऐश्वर्यों के स्वामी बन चुके हैं अपना काय निर्वाण करके लोक

हितार्थ अवतरित होकर आया करते है। हमारे सब के परम आराध्य महामहिम योगयोगेश्वर प्रभुवर श्री रामलालजी ऐसे ही महा सिद्ध योगी थे जो योग सिद्धान्तों को बहुविधि समझाने और जताने के लिए इस देश में आयें। इनके अवतरण का प्रायोजन मात्र योग धर्म का पुनरूत्थान करना था।

हमारे देश के सदियों पुराने इतिहास में जिसमें चतुर्युगी समाई हुई है वह काल– जिसमें महा–प्रभुजी का अवतरण हुआ है, निकटतम आतीत काल ही कहा जा सकता है यह काल रहा है जब देश में एक लम्बे अरसे से विदेशी राजसत्ताओं के

संरक्षण में तामसी और आसुरी संस्कृतियां अपना अवांछनीय प्रभाव जमा रही थीं और वैदिक संस्कृति ह्रासोन्मुखता की ओर बढ़ती जा रही थी। आस्तिक विचारधारा को प्रवाहित करने और नास्तिकता के शक्ति प्रवाह को कैसे किस रूप में निर्मूल किया जाय यह चिन्ता तत्कालीन भारतीय समाज सुधारकों में व्याप्त थी कुछ महामनीषी जो इस दिशा में भारतीय धर्म और संस्कृति के उद्धार का कार्य कर रहे थे उनमें गोस्वामी तुलसीदास के उपरान्त स्वामी दयानंद सरस्वती , उनके गुरू दण्डी प्रज्ञाचक्षु बिरजानंद सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस विवेकानंद स्वामी रामतीर्थ, अरविन्द घोष आदि उल्लेखनीय हैं। निश्चय ही अपने क्रिया कलापों से इन महान दिव्य आत्माओं ने भारतीय धर्म के पुनरूत्थान का कार्य ही किया है। इन सबका जीवन योगाग्नि से ही प्रज्वलित था। महाप्रभु श्री राम–लाल जी का अवतरण 19 वीं सदी के अन्तिम चरण में इसी प्रयोजन को लेकर ही हुआ था कि वे सिद्धयोग अथवा योगधर्म का व्यापक प्रचार करके देश में निष्ठावान और चरित्रवान योगियों की ऐसी श्रृंखला का सृजन करे जो महर्षि पतजंलि के योग दर्शन के सिद्धान्तों का पूर्ण रूप से परिपालन करते हुए अपना ओर अपने समाज का तथा अपने देश तीनों का ही अभ्युदय करने वाली हो। किया भी उन्होंने ऐसा ही। सारा भारत उनका कार्य–क्षेत्र रहा अपने यौगक ऐश्वर्यों से विधि रूपों में अपने प्रचार द्वारा हम सबको को कृर्तार्थ बनाया। सिद्धगुफा और उसकी प्रान्तीय और जिलास्तर की शाखाओं द्वारा योग का जो सार्थक प्रचार कार्य चल रहा है वह सब उन्ही करूणानिधान के आशीर्वाद का सुफल है। आओ आज की इस पावन बेला में हम सब उनको शत् शत् बार स्मरणर और नमन करके अपने को धन्य बनायें।

विपर्यय

सम्पादकीय

आचार्य [illegible]

विपर्यय शब्द दर्शनशास्त्र में बहुत प्रचलित एवं महत्वपूर्ण शब्द है। सारण्य दर्शन सर्वाधिक प्राचीन दर्शन है जो भगवान कपिल द्वारा प्रणीत है। इसमें विपर्यय के विषय में लिखते हुये महर्षि कहते हैं–

"विपर्ययो भेदाः पंच"

अर्थात् विपर्यय के पाँच भेद हैं जो अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश के नाम से जाने जाते हैं यही पाँच भेद योग शास्त्र माने गये हैं जो क्लेश के नाम से वर्णित है। यही क्लेश दुःख कहलाता है। इसमें जो राग नाम का क्लेश है वह व्यवहारिक है प्रसिद्ध है। इस क्लेश को दूर करने के लिए महर्षि कपिल अपने दर्शन में कहते हैं– 'रागोपहतिर्ध्यानम्' अर्थात इस राग नामक क्लेश को नष्ट करने के लिए ध्यान एकमात्र उपाय है। ध्यान का तात्पर्य धारणा और समाधि से है।

योग दर्शन में क्लिष्टाक्लिष्ट पाँच प्रकार की वृत्तियों का वर्णन हुआ है। ये है– प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति इसमें विपर्यय की व्याख्या में सूत्र आया है।

"विपर्ययो मिथ्या ज्ञानमद्रूपप्रतिष्ठम्"

अर्थात् विपर्यय मिथ्या ज्ञान है जो जैसा दिखाई देता हैं। वह वास्तव में वैसा नहीं होता है। इसे ही मिथ्या ज्ञान कहते है। यह भी चित्त की एक वृति है जो नष्ट करने योग्य है। सीप में चाँदी का भान, रज्जू में सर्प का भान, एकचन्द्र में द्विचन्द्र का भान विपर्यय कहलाता है। इसे साधारण भाषा में संशय भी कह सकते हैं। यही विपर्यय ज्ञान आगे अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश

के नाम से परिगणित हैं–इन्हे ही सांख्य परिभाषा में क्रम से तमस मोह, महा मोह, तामिस्त्र और अन्धतामिस्त्र के नाम से जाने जाते हैं। इस प्रकार के ज्ञान के मृग मरीचि भी कहते हैं– मृग को जेठ की दोपहरी में रेत का ढेर जलाशय की भाँति जान पड़ता है। वह आगे दौड़ लगाता है किन्तु जल वहाँ नही होता है। उसे अब पुनः कुछ दूरी पर जलाशय सा दिखाई देता है किन्तु वहाँ भी कहीं जलाशय नहीं होता। इस प्रकार से भागते भागते मृग प्यास के कारण अपना शरीर छोड़ देता हैं। इसे ही मृगमारिचिाका कहते हैं यह संसार भी मृग मरिचिका की भाँति सुखमय प्रतीत होता है किन्तृ अन्त में दुःख ही मिलता है। योगी भतृहरि जी ने कहा है– 'भोगे रोग भयम्' भोगों के भोगने से अन्त में नाना प्रकार के रोग हो ही जाते हैं। चित्त में तमोगुण और रजोगुण की अधिकता से यह भ्रम व्यक्ति के अन्दर हो जाता है– सतोगुण के विकास से ही इस भ्रम का नाश हो जाता है।

न्याय आदि दर्शन शास्त्रों में योग एवं समाधि के द्वारा आत्म ज्ञान का निरूपण किया गया है। न्याय दर्शन में आया हैं– "समाधि विशेषाभ्यासात्" से तत्व ज्ञान होता है। आगे भी कहा है– "तदर्थ यम निदमरभ्यासित संस्कारों योगाच्चाध्यात्स विध्यपायैः"

न्याय 4–2–46

मोक्ष के लिये यम और नियमों का अभ्यास विधि के उपायों द्वारा योग से आत्मा का साक्षात्कार होता है। अर्थात् योग के प्रति बन्धक मल, विक्षेप, और आवरण को हटाना चाहिए।

वेदान्त शास्त्र में ब्रह्म सत्यम् जग–मिथ्या जी वो ब्रह्मैव नापरः का सिद्धान्त निरूपित है। इसमें भी जगत को मिथ्या कहा गया है। मिथ्या उसे कहते हैं। जो एक काल में हो और दूसरे काल में अस्तित्व में न रहे। इसलिये जगत् को सद् असद् दोनों ही कहा है।

आत्म ज्ञान होने पर विवेक ख्याति के उदय होने पर जगत का अस्तित्व नहीं रहता इसलिए जगत सद् और असद् से युक्त होने के कारण ही अनिर्व–चनीय कहा गया है।

उपनिषदों में विद्या और अविद्या दोनों के महत्व को दर्शाया गया हैं इसलिए दोनों के स्वरूप को जो जानता हैं वही राही जानता है अतः कहा है– अविद्यया मृत्युम् तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते' अविद्या रूप इस देह को माध्यम बनाकर साधक आत्म विद्या के द्वारा मुक्ति को पा लेता है।

संशय का ही एक नाम संदेह भी है संशय के विषय में गीता में भगवान ने कहा है। "अज्ञश्च अश्रद्धानश्च संशयात्मा विनश्यति नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः"

गीता 4/40

अर्थात् विवेकहीन और श्रद्धारहित संशय युक्त मनुष्य परमार्थ से अवश्य भ्रष्ट हो जाता है। ऐसे संशय युक्त मनुष्य के लिए न यह लोक है न परलोक है और न ही सुख ही है। इसलिए भगवान् इस संशय के नाश करने की बात कहते है– यह संशय अज्ञान से सम्भूत है, प्रकट हुआ है इसे ज्ञान की तलवार से काट डालो।

सम्पूर्ण गीता के ज्ञान को सुना देने के बाद एवं अपना विश्वरूप दिखाने के बाद अन्त में भगवान् पूछते हैं। अर्जुन! अज्ञान रो उत्पन्न मोह नष्ट हो गया? इसके उत्तर में अर्जुन कहता है।

"नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मया अच्युत!

हे अच्युत! आप की कृपा से जो मोह अज्ञान एवं विषाद चित्त में आ गया था वह नष्ट हो गया है अब में आप की आज्ञारूप युद्ध को अवश्य करूँगा। मिथ्या ज्ञान मनुष्य को पग–पग पर धोखा देता है। व्यवहारिक जीवन में जब तक चित्त में तमोगुण है तब तक संशय से ही घिरा रहता है। संशय को योग मार्ग में विघ्न माना है नौ अन्तरायों में इसकी भी गिनती हुई है। संशय युक्त विपरीत ज्ञान या विरोधी विचार संवादहीनता के कारण दृढ होता चला जाता है। यदि हम अपने विपरीत विचार वाले व्यक्ति से संवाद बनाये रखते हैं तो बहुत सारे भ्रम या संशय दूर होकर हम सुखी वन सकते हैं। गलत फैमियों को दूर कर हम सहज सुखी हो सकते हैं। अन्तर्मल तो हमारा विवेक से ही नष्ट होता है समाधि सिद्ध होने पर ही क्लेश, संशय आदि की पूर्णतया निकृत्ति होती है जो योगी का परम लक्ष्य भी है।

"श्री रामलाल प्रभवे नमः"

श्रीमद् भागवत में योगपरिचर्चा

डा. विजय सिंह

बारहवें स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय में शौनक जी ने भगवान के अंङ्ग, उपाङ्ग और आयुधों के रहस्य तथा विभिन्न सूर्यगणों के बारे में सूत जी से प्रश्न किया है। इन्हीं जिज्ञाशाओं का समाधान इस अध्याय में सूत जी ने किया है।

सूत जी ने कहा–शौनक जी! ब्रह्मादि ने, वेदों और पांचरावादि तन्त्र, ग्रंथो ने विष्णुभगवान की जिन विभूतियों का वर्णन किया है, मैं श्री गुरू देव के चरणों में नमस्कार करके आप लोगों को वहीं सुनाता हूँ।

भगवान के जिस चेतना के आधार पर यह विराट त्रिलोकी दिखायी देती है। वह प्रकृति, सुआत्मा, महतत्व, अहंकार, पंचतन्मात्रा तथा ग्यारह इन्द्रियों तथा पंचभूतों के विकार से बना हुआ है। यह भगवान का पुरूष रूप है। पृथ्वी चरण, स्वर्ग मस्तक, अन्तरिक्ष नाभि, सूर्य नेत्र, वायु नासिका, और दिशायें कान हैं। प्रजापति लिंग, मृत्यु गुदा, लोकपाल भुजायें, चन्द्रमा मन और यमराज भौंहे हैं। लज्जा उपरी ओठ, लोभ, नीचे का ओठ, चन्द्रमा, दन्तावली, भ्रम मुस्कान, वृक्ष रोम और बादल सिर के बाल हैं। जैसे संसारी पुरूष अपने नाप से सात बित्ते का है, उसी प्रकार वह विराट वैश्वानर भी अपने सात बित्ते का है।

स्वंय भगवान अजन्मा है जीव–चैतन्य रूप आत्मज्योति ही कौस्तुममणि है। जिसकी प्रभा को वक्षःस्थल पर श्री वत्सरूप में धारण किये हैं। अपनी सत्व, रज आदि गुणों वाली माया को वनमाला के रूप में, छन्द को पीताम्बर के रूप में, अ, उ, म प्रणव को यज्ञोपवीत के रूप में धारण करते हैं। भगवान सारण्यं

और योगरूप मकराकृत कुण्डल तथा ब्रह्मलोक को ही मुकुट के रूप मे धारण किये है।

बिभर्ति सांख्यं योग च देवो मकर कुण्डले

मौलि पदं पारमेष्ठयं सर्वलोकाभयङ्करम।।12.11.12

मूल प्रकृति ही शेषशय्या है, जिस पर वे विराजते हैं और धर्म–ज्ञान ही उनके नाभिकमल के रूप में वर्णित है। प्राणतत्त्वरूप कौमोद की गदा, जलतत्व रूप, पांजन्य शंख और तेजस्तत्व रूप सुदर्शनचक्र को धारण करते है। आकाश खड्ग तमोमय अज्ञान दाल, कालरूप धनुष (शांरग) और कर्म ही तरकस रूप में धारण करते है। इन्द्रियों के विषय वाण, मन ही रथ, तन्मात्रायें, रथ के बाहरी भाग है। अभयन्वर मुद्रा उनकी वरदान, अभयदान प्रकट करती है। सूर्य अग्नि मण्डल भगवान की पूजा की स्थान है, अन्तरकण की शुद्धि ही मंत्रदीक्षा है और अपने सब पापो को नष्ट करना ही पूजा है। समग्र ऐश्वर्य धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्य ही लीला कमल है जिसे भगवान अपने हाथ में धारण करते है। धर्म और यश चंवर एवं पंखे के रूप में, वैकुण्ठ धाम छलरूप से धारण किये है। वेदों का नाम ही गरूण है वे ही परमात्मा का वाहन है । भगवान की आत्मशक्ति का ही नाम लक्ष्मी है। भगवान के पार्षदों के नायक पांचरात्रि आगमरूप है। अष्ट सिद्धियाँ आठ द्वारपाल है। भगवान का यह विश्वरूप है। वे ही जाग्रत अवस्था में 'विश्व' बनकर शब्द, स्पर्श आदि ब्राह्य विषयों को ग्रहण करते हैं। स्वपनावस्था में 'तैजस' बनकर वाह्य विषयों के बिना ही मन द्वारा विषयों को देखते और ग्रहण करते है। वे ही सषुप्ति में 'प्राज्ञ' बनकर अज्ञान से ढक जाते हैं और वहीं सभी अवस्थाओं के साक्षी 'तरीय' रहकर समस्त ज्ञानों के अधिष्ठान रहते है।

स विश्वस्तैजसः प्राज्ञस्तुरीय इति वृत्तिभिः।

अर्थेन्द्रियाशयाज्ञानैर्भगवान परिभाव्यते।।22.11.12

इस तरह भगवान हरि ही क्रमशः विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुरीयरूप से प्रकाशित हो रहे हैं। जो इन्हें अनुभव कर लेता है, उसे हृदय में रहने वाले ब्रह्मस्वरूप परमात्मा का ज्ञान हो जायेगा।

शौनक जी ने कहाँ–श्री शुक्रदेव जी पांचवे स्कन्ध में परीक्षित से कहाँ था कि ऋषि, गन्धर्व, नाग, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, और देवताओं का एक सौरगण, होता है। और से सातों प्रत्येक महीने बदलते रहते हैं। सूर्य के रूप में भी स्वंय भगवान ही हैं अतः उनके विभाग को हम सुनना चाहते हैं।

सूत जी ने कहा– समस्त प्राणियों के आत्मा भगवान विष्णु ही हैं। उनके यर्थाथ स्वरूप को न जानने के कारण ही समस्त लोकों के व्यवहार–प्रर्वतक प्राकृत सूर्यमण्डल का निर्माण हुआ है। जो लोक में भ्रमणशील हैं। कालरूपधारी भगवान सूर्य लोगों का व्यवहार ठीक–ठीक चलाने के लिए चैत्रादि बारह महीने में अपने भिन्न–भिन्न बारह गणों के साथ चक्कर लगाया करते है। वे सब सूर्य भगवान की विभूतियाँ हैं। जो लोग इनका प्रतिदिन प्रातःकाल और सांयकाल स्मरण करतें हैं, उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। अनादि, अनन्त, अजन्मा भगवान श्री हरि ही कल्प–कल्प में अपने स्वरूप का विभाग करके लोकों का पालन–पोषण करते है।

एवं ह्यनादिनिधनो भगवान हरिरीश्वरः।

कल्पे–कल्पे स्वम्मात्मानं व्यूह्य लोकानदत्यजः।।50.11.12।।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

गुरु मेहरबान तो चेला पहलवान

जगदीश राय बंसल "अधम"

अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक योग योगेश्वर दादा गुरूदेव प्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं अखण्ड मण्डलाकार अनन्त विभूषित प्रातः स्मरणीय गुरूदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपने संस्कारी बच्चों के कल्याणार्थ इस भू लोक पर रहकर ज्ञात–अज्ञात पात्रों पर अपनी कृपा के बादल बरसातें रहे हैं। हिमालय के मन महेश आदि पर्वतों पर अनेकानेक तत्व विजयी माहत्मा साधनारत हैं।, जो न कुछ खाते हैं, न कुछ पीते है, न मल–मूत्र का त्याग करते है। लेकिन कोई योगी महात्मा अपने आराध्य देव जी की भाँति इस धरा–धाम पर पग रखना नहीं चाहता। अपने आराध्य देव भगवान समझाया करते है जो साधक अपने गुरूदेव के प्रति अर्न्तजगत में अधिक निष्ठावान है, वह अन्य शिष्यों से गुरु कृपा ग्रहण करने का विशेष पात्र बन जाता है। इस क्रम से हर गुरु भाई–बहिन पर आपदाओं से बचने के लिए गुरूदेव भगवान को शक्तिपात सुरक्षा कवच बना रहता हैं।

मगर गुरूदेव भगवान की ये विचित्र लीलाऐं हमारी अल्पबुद्धि में नहीं आती। जितनी बुद्धि में आती हैं तो मन में नहीं आती। जितनी मन में आती हैं उतनी कहने में नहीं आती। सम्भवतः ये सब उनदाता जी की कृपा पर ही निर्भर है। हम अपने गुरूदेव भगवान की कृपा लीलाऐं दिन प्रतिदिन देखते ही हैं कि सिद्ध लोकाधिपति, भव भय हारी गुरूदेव भगवान का क्षणिक चिन्तन करने वालों पर अनाथनाथ की कृपाओं के बादल बरसते रहतें हैं। अपनी योग विभूतियों से सिद्धेश्वर जी आवश्यकतानुसार वेशभूषा बना कर मौके पर पहुंचते रहें हैं। कही सर्जन बनकर, कहीं न्यायाधीश बनकर और कही फकीर बनकर, कहीं दरोगा बन कहीं साधू–बाबा बनकर, कहीं पोलिंग अफसर बनकर और कहीं–कहीं अदरण्य, अदष्य रूप से प्रेरणाश्रोत बनकर हर विपत्ती का निवारण करते रहें हैं।

इसी प्रकार का एक कृपा प्रसंग श्री सिद्धगुफा संवाईधाम से निष्ठा रखने वाले, गुरूदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के लाडले कृपापात्र दतीया निवासी छप्पन वर्षिय आदरणीय गुरु भाई श्री अनील दूबे जी ने दिनांक पच्चीस मार्च 2024 को बतलाया कि मुझे दिनांक 24 मार्च सन् 1970 को संवाई धाम में गुरूदेवश्री चन्द्रमोहन जी महाराज से दीक्षा मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। यह कृपा लीला सन् 1999 की है। म0प्र0 शिक्षा विभाग न लगभग 1400 लैक्चरार 10+2 की भर्ती के लिए नोटिफिकेशन जारी किया। मैनें भी सहर्ष आवेदन कर दिया। मेरे पुज्य पिताजी को संसारिक भय सता रहा था। अतः उन्होने विचार विर्मश द्वारा सहायता लेने के लिए

आदरणीय शिक्षा मंत्री जी के पास भोपाल जाने का आदेश दिया। मैं येनकेन प्रकारेणमंत्री महोदय जी से मिलने में तो सफल रहा, किन्तु मेरा पीड़ा ध्यान से सुनने के पश्चात् हमारी विपन्नता भांपते हुए श्रीमान् जी ने कोई भी सहायता करने से स्पष्ट असमर्थ्यता व्यक्त कर दी। घर लोटने के पश्चात् मैनें सत्यता को स्वयं तक सीमित रखकर कह दिया कि पिता जी मंत्री महोदय से मुलाकात सम्भव नहीं हो पाई। अन्यथा मेरे पिताश्री अपने भाग्य की विडम्बना पर न जाने क्या–क्या अवसाद झेलते।

साक्षात्कार के दिन से एक सप्ताह पूर्व ही मैं भोपाल पंहूच गया और अग्रवाल धर्मशाला में आश्रय ले लिया। एक दिन भाग्य विधाता जी की अनुकम्पा से मेरे भाग्य ने ऐसा पलटा खाया कि धर्मशाला के पास में मैन रोड़ पर स्थित चाय की दुकान पर बैठा चाय पी रहा था। तब हमारे एक परिचित जो उस समय भोपाल में स्थित एक सम्मानीय, न्यायधीश के पद पर आसीन थे, वहां से निकल रहे थे। उन्होने मुझे पहचान कर, मेरे सामान सहित मुझे कार द्वारा अपनी कोठी पर ले गये। अगले दिन मुझे घर की कुछ जिम्मेदारीयाँ समझाकर श्रीमान् जी परिवार सहित श्री गुफा मन्दिर के दर्शनार्थ चले गये।

कुछ समय पश्चात् न्यायधीश महोदय जी से मिलने के लिए उनसे एक मित्र डाक्टर साहिब जी आन पधारे। मैनें उनकों आदर सहित अन्दर बैठाया और शिष्टाचार के नाते श्रद्धा से जल–पान की व्यवस्था कर दी। जब हम चाय की चुस्की ले रहे थे तो गुरूकृपा से डाक्टर साहिब मेरे विषय में सालिड़ बाते करने लगे कि तुम कौन हो? किसलिए यहाँ आए हो.......इत्यादि? मैनें सरस वाणी में उनके सम्मुख अपने प्रयोजन का सारा चिट्ठा खोल दिया। कि मैं बेराजगार हूँ यहाँ शिक्षा विभाग में इन्टरव्यू देने आया हूँ और बुधवार के दिन मेरा इन्टरव्यू होना है..........इत्यादि। उन्होंने तपाक से पूछा कि कहीं जुगाड़ लगाया है? प्रत्युतर? में मैनें कहा– नहीं, साहिब कहीं नहीं। वे ओजस्वी से बोले–आपका सलेक्शन नहीं हो सकता। मैनें भी ताव में आकर नहले पर दहला मारा कि मेरा सलेक्शन जरूर होगा। उन्होंनें जिज्ञासा का झटका तारा कि कौन करेगा तुम्हारा सलेक्सन? मैनें आंकाक्षा की ताल से कहा हमारे गुरूदेव करेंगे। उन्होने प्रश्न दागा–कौन है तुम्हारे गुरूदेव? मैने तल्लीनता से अपना पहना हुआ लाकेट दिखाते हुए कहाँ–ये हमारे गुरूदेव भगवान योगयोगे श्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज, इन्हीं के पास है मेरे भाग्य की चाबी। लाकेट पर त्रिलोकी नाथ का तमतमता स्वरूप देखते ही श्री भगवान जी की बोलती बन्द हो गयी। मुझे कुछ देर एक टक निहारते हुए अपनी मृदु वाणी से अमृत टपकाते हुए बोले–आपका सलेक्शन कोई नहीं रोक सकता। इसी तारतम्य

का लाभ लेते हुए मैनें मन ही मन गुरूदेव को प्रणाम करते हुए निवेदन किया कि साहब आप ही कर दीजिए मेरी हैल्प, बोले आपके गुरूदेव ही करेगें आपकी हैल्प,मैं तो निमित्र मात्र हूँ। चाय का दौर समाप्त हुआ और "आ गई लहर शिवा केमन में" वे डाक्टर साहिब जी मेरीफाईल उठाकर न्यायधीश महोदय के लोटने से पहले ही निकल गए।

सिद्धों के सम्राट, अर्न्तयामी गुरूदेव भगवान के अतिरिक्त मेरे पास कोई धरो-हर नहीं। बुधवार के सूर्योदय के साथ ही मेरे भाग्य का निर्णय है और भाग्य की चाबी भाग्य विधाता के पास है। हे गुरूदेव-

तेरे प्यार की जिंदगी में गुल खिल सकता है,
मेरे बड़ते मर्ज का फोरन इलाज हो सकता है।
मदद के सारे रास्तें बन्द ही क्यों न हो,
तेरा ही एक दर है जो सदा खुला रहता है।।

गुरू कृपानुकम्पा को शिरोधार्य कर या यूं कहूँ कि सर्वव्यापी गुरूदेव के संग, मुस्कराता हुआ गुरूदेव शरणम्। गुरूदेव नमामी के सहारे बुधवार को साक्षा-त्कार स्थल पर पंहुच गया। अपना नम्बर आने पर अन्दर जाकर नमस्कार करके अपना स्थान ग्रहण कर लिया। उन्होंने मुझसे प्रश्न किया कि नेवार्ड (एक अन्तर राष्ट्रीय बैंक) की स्थापना कब हुई थी। प्रत्युतर में मैने कहा-सर नेवार्ड की स्थापना सन् 1982 में हुई थी। सर ने कहा ये गलत है मैं अढ़ गया मैने कहा सर, मेरा उत्तर ठीक है। आप प्रमाण स्व-रूप बुक मंगवाईए.........। फिर सरों ने मेरा नाम, पता पूँछकर, आधा घण्टा इन्टरव्यूके स्थान पर मात्र पाँच मिनट में मुझे बाहर कर दिया। मेरे शीघ्र बाहर आने से अन्य परीक्षार्थी भी बहुत हैरान हुए। बोले भैय्या क्या बात हुई? मैंने बता दिया कि मेरा उत्तर गलत सिद्ध करना चाहते थे, मैं बहस कर बैठा अतः मुझे बाहरका रास्ता दिखा दिया। अरे! तुझे बहस नहीं करनी चाहिए थी। सोचा तेरा क्या होगा कालिए?

मैं अनमना सा अपने किए पर धूल उड़ाते हुए, अपने डेरे पर लौट आया। किसी भाई ने लिखा था।-

फिकर मत बाबरे-मत कर मन में सोच।
गुरूदेव का ध्यान कर-छोड़ सभी संकोच।।

अब मैं और कर भी क्या सकता था। मगर देखिए महाबली जी कोः।

वो न तोल कर देता है-न बोल कर देता हैं।
वो जब देता है-दिल खोलकर देता है।।

चाँद तारों की छाव में (सांयकाल) वे श्रीमान् डाक्टर साहिब जी आन पधारें। आते ही मुझे इंकित करते हुए बोले भैय्या (मुझे बाद में पता चला कि डा0 साहिब हमारे उत्कृष्ट आदरणीय गुरू भाई जी ही हैं।) आपको इन्टरव्यू में बहस नहीं करनी चाहिए थी। मैनें न्यायधीश महोदय के सामने ही अपनी गलती स्वीकार करते हुए करबद्ध क्षमा याचना की.........वे बोले कोई बात नहीं। तात्विक बात तो यह है कि तुम्हारा चयन तुम्हारे गुरूदेव महाराज जी ने कर दिया है। मैं आनन्द विभोर हो गया, मन ही मन दया सिन्धु-जगत नियन्ता अपने गुरूदेव भगवान को शत्-शत् प्रणाम किया। फिर श्रीमान् डा0 साहिब का कोटि-कोटि धन्यवाद दिया।

अगले दिन भास्कर की प्रथम किरणों को नमस्कार करके सम्भ्रान्त न्यायधीश जी को अहलादित मन से आभार, धन्यवाद, प्रणाम,............करके गुरूदेव शरणम् गुरूदेव नमामि.......करते करते अपने सपनों की कुन्ज गलीयों से होता हुआ अपने मूल निवास स्थान दतीया लौट आया। किसी ने सच ही कहा है कि-

जिसने तेरी याद को, दिल में बसा लिया।
सोई हुई नसीब को, उसने जगा लिया।।

घर में विराजे गुरू देव भगवान को दण्डवत् प्रणाम कर घटित संस्कारों को यादकर, भोपाल में चाय पीना-न्यायधीश महोदय का उधर से आना-मुझे अपने बंगले पर ले जाना-बगले पर डा0 साहिब का आना-मेरी फाईल ले जाना- इन्टर-व्यू में बहस के बाद भी मेरा चयन होना इत्यादि ये सब सिद्धों के महासिद्ध, सर्व समर्थ्य, अर्न्तयामी जी की लीला ही तो है। मै "पतित" किन शब्दों में गुरूदेव आपका गुणगान करूँ? आपकी करूणा कृपा को शब्दों की माला में पिरोना शेष और शारदा द्वारा सम्भव नहीं हैं। आपने हमें बार-बार समझाया है कि सिद्धों के संकल्प में ही सकल कल्याण निहित होते हैं। गुरूदेव भगवान के श्री चरणों का तनिक भी चिन्तन करने वाले अशरण-शरण पर अनाथ-नाथ की रहमत अकाकरण ही हो जाया करती है...........इत्यादि।

इस प्रकार सात दिन पश्चात् मेरा ज्वाईन लेटर आ गया और दिनांक 18 दिसंम्बर 2000 को मैं दतिया में ज्वाईन पाकर मेरे मन का मोरे नाचने लगा कि मुझ जैसे अल्पज्ञ रूप चींटी के पग बन्धे नुपुर की छन-छनाहट सरकार ने सुन ली, हे गुरूदेव प्रणाम तुम्हेः-

सिद्ध गुफा का कण-कण बोले हे गुरूदेव प्रणाम तुम्हें,
विष्णु का सुदर्शन बोले, हे गुरूदेव प्रणाम तुम्हें,
नारद की वीणा बोले, हे गुरूदेव प्रणाम तुम्हें,
कैलाशवासी बोले, हे गुरूदेव प्रणाम तुम्हें,
मेरे संग सब भाई बोलें, हे गुरूदेव प्रणाम तुम्हें,

"ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः"

श्रद्धा और विश्वास

अन्तूराम यादव प्रयागराज

प्रातः स्मरणीय हमारे आप के प्राण धन सर्व समर्थ सर्वशक्तिमान अन्तर्यामी आनन्दकन्द योग योगेश्वर अनन्त श्री दादा गुरूदेव एवं श्री सद्गुरूदेव भगवान के पावन कमलवत् चरणों में कोटिशः नमन, वन्दन एवं अभिनन्दन! सभी आदरणीय भाई–बहनों को इस दास की तरफ से सादर जयगुरूदेव! श्रद्धा और विश्वास एक दूसरे के पूरक हैं। श्रद्धा और विश्वास दो ऐसे सशक्त एवं महत्वपूर्ण स्तम्भ हैं जिनके सहारे एक साधक अपनी साधना की अन्तिम मंजिल तक पहुँच सकता हैं आइए, आज कुछ प्रेरणादायक दृष्टान्तों के माध्यम से श्रद्धा और विश्वास पर चिन्तन मनन करने का प्रयास करें।

सन्त जन कहते है कि दुनिया में तीन चीजें अत्यन्त दुर्लभ हैं। पहली मानव शरीर, दूसरी–सदगुरू की प्राप्ति, तीसरी–सदगुरू के प्रति पूर्ण श्रद्धा एवं विश्–वास। मानव शरीर और सदगुरू की प्राप्ति ये दोनों तभी सार्थक हो पायेंगे जब सदगुरू के प्रति पूर्ण श्रद्धा और विश्वास हो। श्रद्धा और विश्वास के बिना अर्ध्यात्म क्या किसी मह क्षेत्र में आशातीत सफलता नहीं है। श्रद्धा और विश्–वास के बल पर असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाते हैं। गुरूगीता में भगवान शंकर जी कहते है कि साधक को अपने गुरूदेव के प्रति ऐसी श्रद्धा और विश्वास होना चाहिए कि हमारे गुरू पूरे संसार के गुरू हैं और हमारा गुरू मंत्र सभी मंत्रों में श्रेष्ठ हैं। ऐसा भाव रखने वाले साधक की साधना अवश्य फलित होती हैं। अधिकांश लोगो का यह मत है कि कुछ सिद्ध महापुरूषों को छोड़कर किसी ने प्रत्यक्ष के रूप से ईश्वर, खुदा, गॉड को देखा नहीं है फिर भी उनके प्रति अटूट श्रद्धा और विश्वास रखने वाले लोग उनका अपमान नहीं सहपाते और उनके लिए अपनी जान तक दे देते हैं। इस पर किसी शायर ने कहा है–

"यह मोहब्बत नहीं है तो क्या है, यह हकीकत नहीं है तो क्या है।

जिस पर हम जान देते है अनवर, उसका आँखों से देखा नहीं है।"

श्रद्धा और विश्वास कसा विषय इतना गूढ़ और विस्तृत है कि मेरे जैसा अल्पज्ञ एवं अज्ञानी इस पर कुछ अधिक कहने और लिखने में समर्थ नहीं हैं। कुछ दृष्टान्तों के माध्यम से ही इसे कुछ समझा जा सकता हैं। संक्षेप में कुछ दृष्टान्त आप के समक्ष प्रस्तुत किये जा रहे हैं–

<u>पहला दृष्टान्त–</u> अरूण गोविल एक फिल्म अभिनेता हैं। रामायण सीरियल में उन्होने में भगवान श्रीराम की भूमिका निभाया था एक बार दूर दर्शन पर मैनें उनका एक साक्षात्कार देखा था। सम्वाददाता ने उनसे पूछा अरूण जी! भगवान श्रीराम की भूमिका निभाने से आपके व्यक्तिगत जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा? अरूण गोविल ने बताया कि भगवान श्रीराम की भूमिका ने मरे जीवन पर आमूल–चूक परिर्वतन कर दिया। छोटी त्रुटियाँ, कमियाँ एवं मन के विकार स्वतः ही समाप्त हो गये। कभी–कभी मैं अपने को भूल जाता हूँ कि मैं अरूण गोविल हूँ। व्यवहार में भी सदैव मर्यादा का ही पालन करता हूँ। अरूण जी तो एक सज्जन व्यक्ति हैं। कुम्भकर्ण ने अपने भाई रावण को नसीहत दी थी कि भैया! सीता का पाने के लिए इतना अनावश्यक प्रयास करने की क्या जरूरत थी। आप राम का रूप बना लेते, सीता तो आप को स्वयं स्वीकार कर लेती। रावण ने कहा मैं यह भी करके देख चुका हूँ। जब मैं राम का बनकर सीता के पास जाता हूँ तो मेरा भाव बदल जाता है और सीता में मुझे मुझे माँ का दर्शन होने लगता है। जब एक राक्षस के हृदय में इतना परि–वर्तन हो सकता है तो भला अरूण गोविल के जीवन में परिवर्तन कैसे हो पाता।

अन्त में अरूण जी से सवाद्दाता ने पूछा कि पूरे रामायण सीरियल के दौरान कोई ऐसी घटना बतावें जिससे आप अधिक से अधिक प्रभावित हुए हो। अरूण जी ने बताया कि रामायण सीरियल चल रहा था साथ अगले एपी–सोड की सूटिंग भी चल रही थी। एक दिन सूटिंग जाने से पहले मैं टी–शर्ट और हाफ पैन्ट पहनकर अपने कमरे के सामने कुर्सी पर बैठा था। लोगों से

पूछते हुए एक माँ अपने मरणासन्न बच्चे को गोंद में लेकर आई और मुझसे कहने लगी कि हे राम! मेरा बच्चा बहुत बीमार है आप इसे ठीक कर दीजिए। आप तो भगवान है, आप तो असम्भव को भी सम्भव कर सकते हैं। माँ की बात सुनकर मैं स्तब्ध हो गया। मैंने माँ से कहाँ कि माँ मैं भगवान नहीं हूँ, मैं तो अरूण गोविल हूँ। मैं इस बच्चें को कैसे ठीक कर सकता हूँ। आप इसे किसी डाक्टर के पास लेकर जाइए। माँ ने कहा मैं अपने बच्चें को कई डाक्टर को दिखा चुकी हूँ। सभी डाक्टर ने जबाब दे दिया है जैसे कहा है कि तुम्हारा बेटा मात्र चार छः घन्टे का मेहमान है। आप भगवान् है, आपको छोड़-कर अब मैं कहीं नहीं जाऊँगी। आप मेरे बच्चे के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दे जिससे मेरा बच्चा ठीक हो जाय। माँ की भगवान श्रीराम के प्रति अटूट श्रद्धा एवं विश्वास के आगे बड़े धर्म संकट में पढ़ गया। मन ही मन में ईश्वर से प्रार्थना करने लगा कि हे ईश्वर! इस परीक्षा की घडी में आप ही सहायक हो सकते है। वरना इस माँ का भगवान श्रीराम के प्रति विश्वास टूट जायेगा। मैने बच्चें के सिर पर हाथ रखा और माँ से कहाँ कि माँ अपने बच्चे को लेकर घर जाओं, ईश्वर की कृपा से आप का बच्चा ठीक हो जायेगा। मेरी इस बात को सुनकर माँ ने ऐसी राहत की साँस ली, जैसे जल के बिना मछली को जलाशय मिल गया है।

माँ जब बच्चें को लेकर घर गई तो भगवान राम के प्रति उसकी श्रद्धा और विश्वास का परिणाम दिखाई देने लगा। बच्चे के स्वास्थ्य में बिना दवा इलाज के धीरे-धीरे सुधार होने लगा। सुबह होते होते बच्चा उठकर बैठ गया, कुछ खाया-पीया भी धीरे-धीरे चलने लगा। अरूण जी ने बताया कि दूसरे दिन थियेटर में जहां सूटिंग चल रही थी, गार्ड ने आकर मुझसे कहा कि एक माँ आपसे मिलना चाहती है। जब मैं बाहर निकलकर देखा तो वही माँ अपने बच्चे के साथ खड़ी थी। बच्चा अपने पैरों से चल कर आया था। माँ मेरे पैरों पर गिर पड़ी और कहा हे राम! आप ने मेरे मरणासन्न बच्चे को जीवनदान देकर निहाल कर दिया। वही बच्चा

स्वस्थ हालत में आपके सम्मुख खड़ा हैं। हे राम! आप धन्य हैं। अरूण गोविल ने बताया कि यह मेरे जीवन की एक अप्रत्याशित घटना थी। यह है–श्रद्धा और विश्वास का फल

दूसरा दृष्टान्त– लगभग पैंतीस चालीस वर्ष पुरानी जयपुर राजस्थान की एक बड़ी अद्भुत और प्रेरणादायक घटना है। एक स्थान पर एक आचार्य जी रामचरित मानस पर प्रवचन चल रहा था। अपनी व्यासपीठ की दाहिनी तरफ एक छोटी सी चौकी वर उन्होने आसन लगा रखा था। प्रतिदिन कथा आरम्भ करने से पहले वे कहते– हे अंजनी कुमार हनुमान जी! आइए और अपना आसन ग्रहण कीजिए। अब कथा आरम्भ होने जा रही है। एक दिन एक वकील साहब आये और बोले महाराज जी! अभी कथा शुरू मत कीजिए। पहले आप यह बताइए–प्रतिदिन आप उस चौकी तरफ इशारा करके कहते है कि हे हनुमान जी आइए और अपना आसन ग्रहण कीजिए तो क्या हनुमान जी आकर आसन ग्रहण करते हैं? आचार्य जी ने कहा– हाँ वकील साहब ने कहा कि हमें तो नहीं दिखाई देते और न ही आसन पर उनका कोई चिन्ह दिखाई देता। आचार्य जी ने कहा कि आपको भले ही न दिखाई देते हों, परन्तु मुझे तो दिखाई देते हैं। वकील साहब ने कहा कि कल आपको प्रमाणित करना पड़ेगा वरना मैं यह समझूँगा कि यह सब ढ़ोग है आप सबको धोखा देने का काम करते है। आचार्य जी ने कहा–आप कैसा प्रमाण चाहते हैं? वकील साहब ने कहा कि हनुमान जी तो बहुत बलवान है। आपके कथानुसार जब वे चौकी पर विराजमान हो जायेगे, तब मैं उस चौंकी को उठाऊंगा। अगर वह चौकी उठ गई तो आप की बात मिथ्या साबित होगी और अगर चौकी नहीं उठी तो यह प्रमाणित हो जायेगा की चौकी पर हनुमान जी विराजमान हैं। शर्त लगी कि अगर आचार्य जी हार गये तो हमेशा के लिए कथा करना छोड़ देगे। अगर वकील साहब हार गये तो वकालत का पेशा छोड़ कर आचार्य जी का शिष्य बनकर जीवनभर हनुमान जी की पूजा करेगें आचार्य जी का ह्रदय भगवान श्रीराम एवं हनुमान जी के प्रति श्रद्धा और विश्वास से लबालब भरा था। उन्हें पूरा विश्वास था की परीक्षा की इस घड़ी में हमारे आराध्य

अवश्य सहायक होंगे। दूसरे दिन इस चमत्कार को देखने के लिए हजारों की भीड़ इकट्ठी हो गई। वकील साहब भी आये। प्रतिदिन की तरह आचार्य जी ने कहा– हे हनुमान जी! आइए अपना आसन ग्रहण कीजिए। वकील साहब ने कहा कि अगर आपके हनुमान जी आ गये हो तो मैं अपना कार्य शुरू करूँ। आचार्य जी ने कहा कि हमारे हनुमान जी अपने आसन पर विराजमान हैं, ऐसा मेरा पूरा विश्वास है। हजारों लोगो ने अपनी ऑखों से देखा कि वकील साहब ने अपना पूरा जोर लगा डाला लेकिन चौकी अपनी जगह से टस से मस नहीं हुई। यह क्या था–यह केवल आचार्य जी को अपने इष्ट के प्रति पूर्ण श्रद्धा और आत्म विश्वास का फल था । यह कोई कपोल कल्पित कथा नहीं, बल्कि सच्ची घटना है।

शेष आगे......

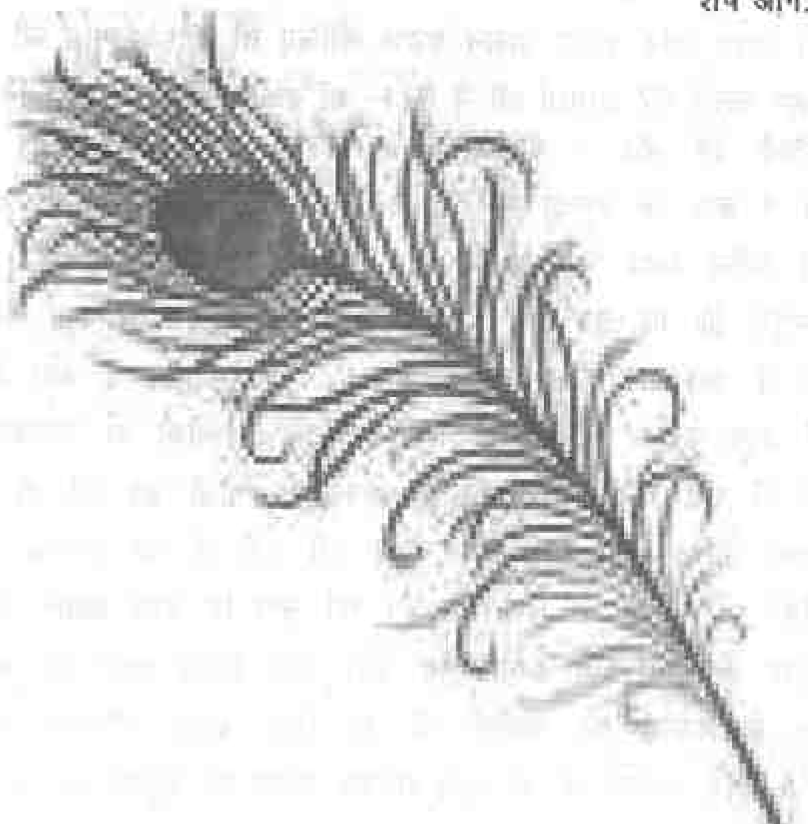

ईशावास्योपनिषद्

श्री पूर्णचन्द्र पंत जी

ए वं क र्म यो ग

(विद्वान लेखक ने ईशउपनिषद के गूढ़ रहस्य को बड़े ही सहज ढंग से समझाने का प्रयास प्रस्तुत लेख में किया है। आशा है 'सिद्धयोग'के पाठक लेखक के विचारों को हृदयगंम करने और उनसे लाभान्वित होने का सुयोग प्राप्त करेंगे। (–सं० सं०)

ईशावास्योपनिषद् शुक्ल यजुर्वेद काण्वशाखीय संहिता का चालीसवां अध्याय है। इस उपनिषद् में कर्मयोग का वास्तविक स्वरूप समझाते हुए इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि साधक को अपने कर्त्तव्य कर्म सदैव करते ही रहना चाहिए किन्तु सांसरिक पदार्थों में किंचित मात्र भी आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। संसार के सभी भोग्य पदार्थ अनित्य हैं, नाशवान हैं। वे किसी के भी नहीं हैं। मनुष्य अज्ञानवश उनमें ममता कर बैठता है। वस्तुतः ये सब के सब पदार्थ सर्वव्यापी सर्वनियन्ता परमेश्वर के हैं। अतः उन्ही की प्रसन्नता के लिए उपयोग होना चाहिए।

उपनिषद् का पहला ही मन्त्र हैः–

ईशावास्यमिदँ सर्व
यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा
मा गृधः कस्यास्विद् धनम्।।

ब्रह्माण्ड भर में जो कुछ भी जड़ चेतन स्वरूप यह संसार जितना भी हमारे देखने, सुनने और समझने में आ रहा है, यह सब का सब सर्वनियन्ता सर्वाधार एवं सर्वज्ञ परमात्मा से व्याप्त है। इस जगत में कोई भी चर अचर पदार्थ या स्थान ऐसा नहीं है। जो उन परमेश्वर से रहित हो। ऐसा समझ–

कर उन सर्वाधार परमेश्वर को निरन्तर अपने साथ रखते हुए– सदा सर्वदा उनको स्मरण करते हुए तथा संसार में ममता और आसक्ति का त्याग करते हुए विषयों का उपभोग करो। क्योंकि धन–वैभव किसी का भी नहीं है केवल मात्र परमेश्वर का ही उस पर अधिकार है।

कुर्वन्नवेह कर्माणि
जिजीविषेच्छतं समा।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति
न कर्म लिप्यते नरे।।

–ईश उपनिषद् 2

सर्वशक्तिमान परमेश्वर की सर्वव्याप–कता को सतत स्मरण रखते हुए उन्हीं की पूजा के विभिन्न शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित कर्त्तव्य कर्मों को करते हुए ही इस संसार में सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करो। अर्थात् अपना सारा जीवन ईश्वर को समर्पण कर दो। ऐसा करने से वे कर्म तुझे बन्धन में नहीं डाल सकेंगे। कर्म करते हुए कर्म से लिप्त न होने का अन्य कोई साधन नहीं है। गीता के अठारहवें अध्याय के छियालीसवें श्लोक में जगदात्मा श्रीकृष्ण का भी यही उपदेश है–

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां
येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धि
विदन्ति मानवः।।

जिस परमात्मा से यह संसार पैदा हुआ है, जिससे समस्त जगत का संचालन होता है, जो सबका उत्पादक, आधार एवं प्रकाशक है और जो सब में परिपूर्ण है, अर्थात् जो परमात्मा अनन्त ब्रह्माण्डों के रहते हुए भी यथावत् रहता है, जो अनन्त ब्रह्माण्डो से व्याप्त है, उस परमात्मा का अपने वर्णाश्रमाचित कर्त्तव्य कर्मों द्वारा पूजन करता हुआ साधक परम सिद्धि को प्राप्त होता है।

जो साधक पूर्वोक्त प्रकार से परमे–श्वर को ही सर्वस्व समझता हुआ परम श्रद्धा और विश्वास के साथ अपने समस्त कर्मों में अहंता, ममता एवं फलेच्छा को त्यागकर परमेश्वर की प्रसन्नता के लिए निःस्वार्थ भाव से किये जाने वाले अपने स्वाभाविक कर्मों द्वारा उनको पूजा करता है वह कर्मबन्धन से सर्वथा मुक्त होकर परम सिद्धि पा जाता है।

जो मनुष्य कामोपभोग को ही जीवन का परम ध्येय मानकर विषयों की आसक्ति एवं कामनावश मनमाने ढ़ग से आचरण करते हुए विषयों के उप भोग में ही लगे रहते है वे आत्मा की हत्या करने वाले हैं। उनकी अधो-गति का वर्णन करते हुए उपनिषद् में आगे कहा गया है–

असुर्या नाम ते लोका
अन्धेन तमसाऽऽवृताः।
ता ँस्ते प्रेत्याभिगच्छति
ये के चात्महनो जनाः।।

–ईश0 उप0 3

असुरों के जो प्रसिद्ध नाना प्रकार की योनियाँ एवं नरक रूप लोक हैं वे सभी लोक अज्ञान रूप दुःख एवं अंधकार से अच्छादित हैं। आत्मा की हत्या करने वाले अर्थात् आत्मोत्थान के लिए प्रयत्न न करने वाले कमोपभोग परायण लोग तो बार-बार इन्हीं भंय-कर नरको में एवं शूकर-कूकर आदि योनियों में भटकते रहते हैं।

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्याय ँरता।।

ईश0 उप0 9

जो मनुष्य भोगों में आसक्त होकर उनकी प्राप्ति के साधन रूप अविद्या में अर्थात विविध प्रकार के कर्मों में लगे रहते हैं। वे उन कर्मों के फलस्वरूप अज्ञानान्धकार से परिपूर्ण शूकर-कूकर आदि योनियों में ही प्रवेश करते हैं।

दूसरी श्रेणी के वे मनुष्य ज्ञान के मिथ्या अभिमान में मस्त होकर न तो अन्तःकरण की शुद्धि के लिए निष्काम कर्मों को ही करते है और न विवेक वैराग्यादि साधनों को अपनाते हैं, वे मिथ्याज्ञानुभिमानी तो सकामभाव से कर्म करने वाले विषयासक्त मनुष्यों की अपेक्षा भी अधिक अन्धरकारपूर्ण घोर नरको को प्राप्त होते हैं।

विद्यां चाविद्यां च
यज्ञतद् वेदोभय् ँ सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा
विद्यायाऽमृतमश्नुते।।

–ईश0 उप0 11

जो मनुष्य उन दोंनो को अर्थात् ज्ञान के तत्व को ओर कर्म के तत्व को एक साथ ही भली भाँति समझ लेता है वह कर्मों के अनुष्ठान से मृत्यु को पार करके ज्ञान के अनुष्ठान से अमृतस्वरुप आनन्द-मय परमेश्वर को प्रत्यक्ष कर लेता है।

इस मन्त्र का भाव यह है कि कर्म-रहस्य से अभिनज्ञ ज्ञानाभिमानी मनुष्य कर्म को ब्रह्मज्ञान में बाधक समझकर अपने वर्णाश्रमी चित कर्त्तव्य कर्मों को त्याग देते हैं। इसी प्रकार ज्ञान का तत्व न समझने के कारण मनुष्य अपने ज्ञानी और संसार से ऊपर उठे हुए मान लेते हैं। अतः वे या तो अपने को पुण्य-पाप से अलिप्त मानकर मन-माना आचरण करने लग जाते हैं। या कर्मो को भाररूप समझकर छोड देते हैं। इन दोनों प्रकार के अनर्थों से बचने का एक मात्र उपाय यह है कि- कर्म और ज्ञान के रहस्य को एक साथ समझकर आचरण करना चाहिए। यही परम कल्याण का साधन है।

अन्धं तमः प्रविशन्ति

येऽसम्भूतिमुपासते।

ततो भूय इव ते तमो

उ सम्भूत्या्ं रता।।

—ईश0 उप0 12

जो मनुष्य इस लोक की ओर पर-लोक की भोग सामग्रियों में आसक्त होकर उनकी प्राप्ति के लिए विनाश-शील देव, पितर और मनुष्य आदि की उपासना करते हैं वे मरने के बाद अज्ञानरूप घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं।

और जो अविनाशी परमेश्वर की मिथ्या उपासना में मत्त होकर देवताओं को तुच्छ बताते हुए न तो उपासना करते हैं। न गुरुजनों का सम्मान करते हैं, न स्वाध्याय करते हैं और न ध्यानाभ्यास करते हैं ऐसे दम्भी पुरुषों को तो विनाशशील देव, पितर आदि की सकाम उपासना करने वालों की अपेक्षा भी अधिक घोर अन्धकारपूर्ण नरकों में प्रवेश करना पड़ता है।

सम्भूतिं च विनाशं च

यस्तद् वेदोभय्ँ सह।

विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा

सम्भूत्यसमृतमश्नुते।।

—ईश0 उप0 14

जो मनुष्यों उन दोनों को अर्थात् अविनाशी ईश्वर को और विनाशशील देवताओं को इस प्रकार जान लेता है कि परमेश्वर, नित्य, अविनाशी, निर्विकार, सर्वव्यापी एवं सर्वाधार है और देवता, पितर एवं मनुष्य विनाशशील क्षणभंगुर एवं जन्म मृत्युशील हैं वह ज्ञानी महापुरुष विनाशशील देवताओं की निष्काम उपासना

से मृत्यु को पार करके अविनाशी परब्रह्म की उपासना से अमृत को भोगता हैं। अर्थात अमृतरूप परमेश्वर को प्रत्यक्ष प्रान्त कर लेता है।

साधक को निष्कामभाव से परमेश्वर की उपासना करनी चाहिए किन्तु उनकी प्राप्ति के लिए उनसे यह प्रार्थना भी अवश्य करनी चाहिए।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्या–
पिहितं मुखम्।
तवं पूषन्नपावृणु
सत्यध्समयि दृष्टये।।

–ईश0 उप0 15

हे सबका भरण पोषण करने वाले परमेश्वर आप सत्यस्वरूप का दिव्य श्रीमुख ज्योतिर्मय सूर्य मण्डल रूप पात्र से ढका हुआ है। आपकी भक्ति रूप सत्यधर्म का पालन करने वाले मुझको अपने दर्शन कराने के लिए उस आवरण को आप हटा दीजिए। अर्थात अपने सच्चिदानन्द स्वरूप को प्रत्यक्ष प्रकट कीजिए।

निष्काम उपासना ही परमेश्वर प्राप्ति का एकमात्र साधन है। मुण्डकोपनिषद में भी इस सिद्धान्त की पुष्टि की गई है जैसे:

स वेर्दतत् परमं ब्रह्म धाम,
यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम्।
उपासते पुरूषं ये ह्यकामा–
स्ते शुक्रमेतदतिवर्तन्ति धीराः

–मु0उ0 3/2/9

जिसमें यह सम्पूर्ण लगत स्थित हुआ प्रतीत होता हैं उस परब्रह्म परमेश्वर की जो साधक समस्त भोगों की कामना का त्याग करके उपासना करते है वे बुद्धिमान मनुष्य रजोवीर्यमय इस शरीर को अतिक्रमण कर जाते हैं। अर्थात् पुनर्जन्म नहीं होता।

कर्ममीमांसा को भलीं भाँति समझकर जीवन में व्यवहार करना अर्थात अपने को ईश्वर के हाथ की कठपुतली मानकर फल की इच्छा न रखतें हुए असक्ति रहित होकर परमेश्वर प्रीत्यर्थ पवित्र कर्मों को करना तथा अहंकार एवं स्वार्थभाव न रखते हुए प्राणीमात्र के कल्याणार्थ कर्म करना कर्मयोग कहलाता है। गीता में इसे समत्वयोग, अनासक्त योग आदि नामों से भी अभिव्यक्त किया गया है। गीता तथा पुराणों में वर्णि भक्ति योग भी इसी का ही एक अंग है योग दर्शन में महर्षि पंतजलि देव जी महाराज ने इसी कर्म–योग को क्रियायोग के नाम से वर्णित किया है। क्रियायोग की परिभाषा एवं उसका फल बताते हुए महर्षि लिखते हैं–

तपः स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधानादि
क्रियायोगः। (योगदर्शन)

तप करना, स्वाध्याय करना और ईश्वर को आत्म समर्पण करना क्रियायोग कहलाता हैं क्रियायोग का फल है–

समाधि भावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च

(योगदर्शन)

अर्थात् अविद्यादि क्लेश जिनके संस्कार अनादिकाल से चित्त पर पड़े हुए है तथा जिनसे प्रभावित होकर जीव आसक्तिपूर्वक कर्मों में प्रवृत्त होता है, उन क्लेशों की निवृत्ति क्रियायोग की साधना से होती है तथा क्रिया योग से ही समाधि सिद्ध होती है।

कर्मयोग क्या है? इस विषय में साधारणतया लोगों को भ्रान्ति रहा करती है। वे कर्मयोग का अर्थ लेते हैं कर्मठ बने रहना। अर्थात् निरन्तर कर्मरत रहना। इस सिद्धान्त के अनुसार तो कीटपंतग एवं पशु पक्षियों को भी कर्मयोगी समझना चाहिए जो कि निष्ठापूर्वक अपनी रूचि के कर्मों में लगे रहते हैं। चींटीं दिन–रात श्रम करती है और संग्रह के कार्य में लगी रहती है मधुमक्खी शहद के संग्रह के लिए प्रतिक्षण फूलों पर मडराती है। चिड़िया अनवरत काम में लगी रहती है। कुत्ता निष्ठापूर्वक अपने स्वामी की गृहरक्षा का कार्य करता है।

इस प्रकार कर्मठता को कर्मयोग नहीं कहा जा सकता, बल्कि योगनिष्ठ होकर कर्म करना ही कर्मयोग है। फलेच्छा को त्यागकर शरीर और इन्द्रियों से अपने कर्त्तव्य कर्मों को करते रहना और मन को ईश्वर चिन्तन में लगाये रखना ही वास्तविक कर्मयोग है। कर्मयोगी आत्म–शुद्धि के लिए कर्म करता है।

अखिल ब्रह्माण्ड नायक योगेश्वर श्री–कृष्ण का पवित्र वचन हैं–

कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्ग. त्यक्त्वात्मशुद्धये।।

(–गीता 5/11)

अतः कल्याणकारी व्यक्ति को चाहिए कि–वह "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीवियोच्छतं समाः" वेद भगवान के इस पवित्र आदेश को हृदय में धारण करता हुआ लोक संग्रह के लिए आत्म शुद्धि के लिए तब तक कर्म करता रहे जब तक उसे संसार से पूर्ण विरक्ति न हो जाये। जगन्नियन्ता श्रीकृष्ण का पवित्र आदेश है–

तावत्कर्माणि कुर्वति
न निर्विघेत् यावता।
मत्कथा श्रवणादौ वा
श्रद्धायावन्ने जायते।।

भागवतपुराण

कर्म के सम्बन्ध में जितने भी विधि निषेध है उसके अनुसार तब तक कर्म करते रहना चाहिए। जब तक इस लोक और स्वर्ग लोक के सुखों से वैराग्य न हो जाये, अथवा मुझ परमेश्वर की लीला–कथा के श्रवण कीर्तन आदि में पूर्ण श्रद्धा का उदय न हो जाये।

नैतिकता ही नहीं: मुक्ति ही लक्ष्य है

श्री स्वामी विवेकानन्द

निश्चय ही नैतिकता मनुष्य का चरम लक्ष्य नहीं है, वह तो मोक्ष प्राप्ति का साधन मात्र है। वेदान्त कहता है कि इस ब्रह्म–तत्व की अनुभूति का एक मार्ग 'योग' है। योग अपने आन्तरिक मुक्त स्वरूप की अनुभूति से होता है और इस अनुभूति के सामने सभी वस्तुएँ पराभूत हो जाती है। तथा ज्ञान हो जाता है कि नैतिकता और आचार का स्थान कहाँ पर है।

एक छोटे से परमाणु से लेकर मनुष्य तक, अचेतन प्राणहीन जड़ वस्तु से लेकर सर्वोच्च मानवात्वा तक जो कुछ भी हम इस विश्व में देखते हैं, अनुभव करते है, या श्रवण करते है, वे सब ही मुक्ति की ही चेष्टा कर रहे हैं। असल में उस मुक्ति लाभ के लिए संग्राम का ही फल है– यह जगत्। इस जगत् रूप में प्रत्येक परमाणु दूसरे परमाणुओं से पृथक हो जाने की चेष्टा कर रहा है, पर दूसरे उसे आवद्ध करके रखे हुए हैं। हमारी पृथ्वी सूर्य से दूर भागने की चेष्टा कर रही है, तथा चन्द्रमा पृथ्वी से। प्रत्येक वस्तु में अनन्त विस्तार की प्रवृति है। इस संसार में हम जो कुछ भी देखते हैं, उस सब का मूल आधार मुक्तिलाभ के लिए संघर्ष ही है। इसी की प्रेरणा से साधु उपासना करता है और चोर चोरी। जब कार्य प्रणाली अनुचित होती है, तो उसे हम बुरी कहते हैं, और जब कार्यप्रणाली का प्रकाश उचित तथा उच्च होता है, तो उसे हम अच्छा या श्रेष्ठ कहते हैं। पर दोनों दशा–ओं में प्रेरणा एक ही होती है, और वह है मुक्तिलाभ के लिए चेष्टा। साधु अपनी बद्ध दशा को सोचकर कातर हो उठता है, वह उससे छुटकारा पाने की इच्छा करता है और इसलिए ईश्वरोपासना करता है। इधर चोर भी यह सोचकर परेशान हो जाता है कि उसके पास अमुक वस्तुएँ नहीं हैं। वह उस अभाव से छुटकारा पाने की–मुक्त होने कामना करता है और इस– लिए चोरी करता है। चेतन अथवा अचेतन समस्त प्रकृति का लक्ष्य यह मुक्ति ही है। जाने या अनजाने सारा जगत् इसी लक्ष्य की ओर पहुंचने का यत्न कर रहा है पर हाँ, यह अवश्य है। कि मुक्ति के सम्बन्ध में एक साधु की धारणा एक चोर की धारणा से नितान्त भिन्नहै यद्यपि वे दोनों हीछुटकारा पाने की

प्रेरणा से कार्य कर रहे हैं। साधु मुक्ति के लिए प्रयत्न कर अनन्त अनिर्वचनीय आनन्द का अधिकारी हो जाता है, परन्तु चोर के तो बन्धनों पर बन्धन बढ़ते ही जाते हैं।

प्रत्येक धर्म में मुक्तिलाभ की इस प्रकार चेष्टा का विकास पाया जाता है। यही सारी नीति की सारी निः स्वार्थपरता की नीव है। निः स्वार्थपरता का अर्थ है–'मैं यह क्षुद्र शरीर हूँ' इस भाव से परे होना। जब हम किसी मनुष्य को कोई सत्–कार्य करते, दूसरों की सहायता करते देखते हैं तो उसका तात्पर्य यह है कि वह व्यक्ति 'मैं ओर मेरे' के क्षुद्र वृत्त में आवद्ध होकर नहीं रहना चाहता। इस स्वार्थपरता के वृत्त के बाहर बस 'यहीं तक' जाया जा सकता है, इस प्रकार की कोई निर्दिष्ट सीमा नहीं है। सारी श्रेष्ठ नीतिप्रणालियाँ यही शिक्षा देती हैं कि सम्पूर्ण स्वार्थत्याग ही परम लक्ष्य है।

मान लो, किसी मनुष्य ने इस सम्पूर्ण स्वार्थ–त्याग को प्राप्त कर लिया,–तो फिर उसकी क्या अवस्था हो जाती है? फिर वह अमुक–अमुक नामवाला पहले का सामान्य व्यक्ति नहीं रह जाता। उसे तो फिर अनन्त विस्तारलाभ हो जाता है। फिर उसका पहले का क्षुद्र व्यक्तिगत्व सदा के लिए नष्ट हो जाता है–अब तो वह अनन्तस्वरूप हो जाता है। इस अनन्त विकास की प्राप्ति ही असल में सब धर्मों का एवं समस्त दार्शनिक और नैतिक दशाओं का लक्ष्य है। व्यक्तित्ववादी जब इस तत्व को दार्शनिक रूप में रखा हुआ देखता है, तो वह सिहर उठता है। परन्तु साथ ही जब वह स्वयं नीति का प्रचार करता है, तो आखिर वह क्या करता है? वह भी इस तत्व का ही प्रचार करता है। वह भी मनुष्य की स्वार्थपरता की कोई सीमा निर्दिष्ट नहीं करता।

मान लो, इस व्यक्तित्वाद के अनुसार एक मनुष्य सम्पूर्ण रूप से निःस्वार्थी हो गया। तो हम उसमें तथा अन्य सम्प्रदाओं के पूर्ण सिद्ध व्यक्तियों में क्या भेद पाते हैं? वह तो विश्व के साथ एकरूप हो गया है, और इस प्रकार एकरूप हो जाना ही तो सभी मनुष्यों का लक्ष्य है। केवल बेचारे व्यक्तित्व–वादी में इतना साहस नहीं कि वह अपनी युक्तियों का, यथार्थ सिद्धान्त पर पहुंचने तक, अनुसरण कर सके। निःस्वार्थ कर्म द्वारा मानव जीवन की चरमावस्था इस मुक्ति का लाभ कर लेना ही कर्मयोग है। अतएव हमारा प्रत्येक स्वार्थपूर्ण कार्य हमारे अपने इस लक्ष्य की ओर पहुंचने में बाधक होता है तथा प्रत्येक निःस्वार्थ कर्म हमें उस चरम अवस्था की ओर बढ़ाता है। इसलिए नैतिकत की यहीं एक मात्र व्याख्या हो सकती है कि जो स्वार्थ परक है वह 'नीति–विरुद्ध' है जो निःस्वार्थपरक है, वह 'नीतिसंगत' है।

'समुद्र की ओर एक नदी द्रुति गति से बहती हुई जा रही थी' दीदी इतनी उतावली क्यों है, कहाँ जा रही? किसी ने उससे पूछा।नदी ने मुस्कराते हुए उससे कहा, मैं क्षुद्र से विशालतम की ओर जा रही हूं। यही मेरा लक्ष्य है और इस लक्ष्य को पा लेना मेरा सहज धर्म है।

प्रभुजी के नाम की शक्ति

पाप ताप शाप विमोचन-भक्ति

डा0 श्री महेन्द्रप्रकाश गुप्त

संसार का गणित बहुत ही उल्टा है। परम पूज्य प्रातः स्मरणीय गुरूदेव के श्री चरणों में अपार भीड़ देखकर ऐसा लगता है जैसे हम सारे के सारे भक्तगण बड़े त्यागी-तपस्वी हो गये है और प्रभुजी के श्री चरणों में बैठकर हम लोग त्याग, तपस्या, उदारता की बातें भी करते हैं। लेकिन वास्तविकता यह है कि हम सभी लोग यह चाहते है कि इस प्रकार की बातें करने से प्रभुजी प्रसन्न हो जाये और हमें ज्यादा से ज्यादा सांसारिक सुख वैभव प्रदान कर दें। इसका अभिप्राय यह है कि हम दिखावा कुछ करते हैं और हृदय से मन से कुछ और चाहते हैं यही संसार का गणित है जब हम किसी वकील के जीवन-दर्शन का अवलोकन करते हैं तो वकील साहब न्याय की दुहाइयां देते हैं, मेरा कार्य लोगों को न्याय दिलवाना है। जब हम 'कोर्ट न्यायालय में देखते है तो पता चलता है कि वे कातिलो और डाकुओं का मुकदमा लड़कर उन्हें दण्ड मिलने से बचाने के लिए जीतोड़ प्रयास कर रहे हैं। संसार के सभी चिकित्सक बड़े गर्व के साथ कहते हैं कि जनता का बहुत बड़ा सेवक हूँ रोगो से लोगों की मुक्ति दिलवाता हूं। इन चिकित्सक महोदय का दूसरा पक्ष भी आपने अवश्य देखा होगा। चिकित्सक महोदय अपने चिकित्सालय में बैठे हैं, मरीज एक भी नहीं आ रहा है। चिकित्सक महोदय बड़े परेशान हैं, मरीज क्यों नहीं आ रहे हैं इसका तात्पर्य यह है प्रत्येक चिकित्सक मन से यह चाहता है कि संसार में ज्यादा तक ज्यादा बीमारी फैले और उसका चिकित्सालय मरीजों से भरा रहे, कैसा उल्टा गणित है। इसी तरह से चुनाव की तिथियों की घोषणा हो चुकी। उम्मीदवारों के नामांकन पत्र दाखिल हो गये। नेतागण आपके दरवाजे पर हाथ जोड़ कर बड़ी बड़ी विनम्रता, शालीनता का परिचय देकर आपकी तकलीफें पूछ रहे हैं। लगता है ये जनता के बड़े सेवक हैं, जिस दिन वे चुन लिय जाते हैं, उस दिन उनकी सेवा की परिभाषा बदल जाती है। जनता की सेवा के स्थान पर वे स्वयं अपनी तिजोरियां भरने लगते है। तात्पर्य यह है कि सांसरिक मनुष्य दोहरे व्यक्तित्व में जी रहा है। वह मुखारबिन्द से कुछ और बोल रहा है और चाह रहा है कुछ और। भौतिक सुख जितना खोजा जाता है। उतनी ही अतृप्ति बढ़ जाती है। सुख की प्राप्ति में आशा में निराशा ही हाथ लगती है निराशा से विवाद उत्पन्न होता है और विवाद गुरूचरणों में आत्म-समर्पण की प्रेरणा प्रदान करता है।

मेरे एक मित्र बड़े विद्वान है। बहुत-सारी रामायण की चौपइयां उन्हें कण्ठस्थ है। अपने आपको बड़ा धार्मिक समझते हैं। एक दिन उन्होंनें कहा कि कविकुल-कमल-दिवाकर को स्वामी जी का रामचरित मानस एक बहुत बड़ा आध्यात्मिक ग्रन्थ है। मैनें कोई उत्तर नहीं दिया, क्योकि मैं

स्वयं रामचरित मानस को एक दिव्य प्रेरणात्मक मानस मंथनात्मक, मानस दर्पणात्मक ग्रन्थ मानता है। मेरे उत्तर न देने से वे कुछ खीज उठे। बोले–तुम कुछ बोलते ही नहीं हो? तब मैने कहा कि पहले तो आप मेरे अपराध को क्षमा करे। इस ग्रन्थ की आलोचना करना मुझ जैसे मुर्ख व्यक्ति को सम्भव ही नहीं है। मै तो केवल इतना मात्र जानता है कि रामचरित मानस एक मानस–शास्त्र है जिसको पढ़कर हमारे हृदय में इतनी क्रांति हो जाय, जहां से अध्यात्म की यात्रा शुरू होती है। सच्चे अर्थों में रामचरित मानस पढ़कर भरतलाल की तरह मानस मन्थन नहीं हुआ। मन, बुद्धि, चित्त और अंहकार प्रभु के चरणों में समर्पित नहीं हुए तो कुछ भी नहीं हुआ। रामचरित मानस या गीता साधना की पहली सीढ़ी है। साधक के लिए अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ है। इसके आगे की यात्रा किसी सिद्धयोगी तपस्वी के श्रीचरणों में बैठकर ही संभव हो पाती है। जिन दिव्य विभूतियों के पास शब्दों का माया–जाल नहीं है, वरन् अनिर्वचलीय, अकथनीय, अवर्णनीय अनुभूति का खजाना है। सन्त शिरोमणि सूरदास से किसी से पूछा–तुम्हारा कन्हैया कैसा है, तो भक्त–प्रवर भगवान की गाथा इन शब्दों में गा उठे।

अबगतिगति कछु कहज न आवै।
ज्यों गूँगहि मीठे फल को,
रस अन्तगत ही भावै।

हमारे परम प्रभु, जिनका हम अर्चन, चिन्तन, वन्दन नित्य ही करते हैं, ज्योतिपुन्जय रामलाल जी ही तो हैं, एक अद्भूत नाम है। राम जी रोम–रोम कण–कण में व्याप्त है।

प्रभुजी के राम–नाम में तीन ही तो अक्षर हैं–(र, अ, म)। ये तीनों बीजाक्षर हैं–'र' अग्निबीज है, 'अ' सूर्यबीज है और 'म' चन्द्रबीज जैसे अग्नि समस्त विकारों जलाकर भस्म कर देती है (रकारेन·लबीज कृत्वा मनोमलं सर्व भस्म) आत्मा रूपी स्वर्ण को अति उज्जल स्वरूप में प्रस्तुत करती है, मन के मल विषय वासनाओं से मुक्ति दिला देती है। 'अ' अक्षर सूर्यबीज है। सूर्य के निकलते ही समस्त संसार का वीभत्स घटाटोप अन्धकार पराजित होकर विलीन हो जाता है। प्रभूजी का नाम का 'अ' अक्षर हृदय के माया मोह, ईर्ष्या, द्वेष कपट के अन्धकार को नष्ट करके ज्ञान का प्रकाश बिखेर देता है। इसी तरह से प्रभुजी के नाम का 'म' अक्षर चन्द्रबीज है। जिसके उच्चारण करते ही हृदय में प्रभुजी के प्रति भक्ति उत्पन्न होते ही सांसारिक दैहिक दैविक और भौतिक त्रितापों का शमन हो जाता है। हृदय में शीतलारूपी अमित तृप्ति आ जाती है। हमारे भक्तगणों का तो यह अनुभव है कि जब–जब उन पर विपदा के बादल मड़राने लगते हैं, वे एक स्वर से 'प्रभु रामलालजी की जय' का उदघोष करते हैं और विपत्ति के बादल बिना कुछ नुकसान किये समाप्त हो जाते हैं। यह प्रभुजी की अपार कृपा का ही प्रतिबल है।

प्रभुजी के एक परम भक्त ने बतलाया था उनके नाम का एक एक अक्षर (र) वैराग्य का द्योतक है। (अ) ज्ञान का प्रतीक है और (म) भक्ति की सुरसरिता का हेतु है। जहाँ वैराग्य, ज्ञान और भक्ति की त्रिवेणी प्रवाहित हो रही हो वहाँ का कहना ही क्या?

एक भक्त ने एक और बहुत अच्छी बात बत–लाई कि सूर्य का प्रकाश तो दिन में ही रहता है, चन्द्रमा का प्रकाश केवल रात को

ही रहता है। अग्नि को जब जलाया जाता है तब प्रकाश होता है, लेकिन हमारे परम प्रभु गुरूदेव का प्रकाश तो सदैव ही उनके भक्तगणों पर रहता है। जैसे-जैसे गंगा-मैया अपनी बाहें फैलाकर अपने लाड़ले लालों का हृदय से लगाने के लिए पट चौबीसों घण्टे खोले रहती हैं, वैसे ही परमप्रभुजी हैं।

प्रभुजी का नाम केवल राम ही नहीं है वरन लाल भी है। शब्द कोश में लाल का तात्पर्य होता है कि एक अमूल्य ज्योतिमान रत्न जिसका दिव्य प्रकाश होता है। यह वह मणि है जो घटाटोप अन्धकार को विदीर्ण करने की शक्ति रखती है लाल शब्द आत्मीयता का भी प्रतीक है। संसार में किसी व्यक्ति के पास लाल हो तो इसकी नींद हराम हो जायेगी। दिन-रात चोरी का भय लगा रहेगा, परन्तु हमारे परम प्रभु के 'लाल' के पास भय नाम की कोई बात नहीं। 'लाल' का अर्थ प्यार या दुलार भी होता है। हमारे परम प्रभु अपना प्यार-दुलार असंख्य शिष्यों को नित्य बाँटते रहते हैं। गुरु प्यार और दुलार के बीच में कोई दूरी नहीं होती है। जब हृदय से याद किया, प्रभुजी की कृपावृष्टि होने लगी। धन्य है हमारे प्रभुजी।

एक समर्पित ब्रह्मचारी ने प्रभु के इस नाम की एक और विशेषता बतलाई। उन्होंने बतलाया कि लाल शब्द में दो व्यंजन 'लाल' तथा एक स्वर (अ) है। पहला व्यंजन (ल) इहलोक से सम्बन्धित है। स्वर (अ) शाब्दिक यात्रा का पहला अक्षर है, दूसरा (ल) पर-लोक यात्रा का द्योतक है। अर्थात् इहलोक से परलोक तक की यात्रा में जो मार्ग-दर्शन प्रकाश है, वह परम प्रभु का 'लाल' शब्द है।

अपने ही एक गुरु-भाई ने अंग्रेजी शब्दावली के माध्यम से यह बतलाया कि प्रभुजी के पावन नाम में एक ऐसी सिद्धि है, ऐसा चमत्कार है जो साधारण सी बूँद को सागर बना सकता है। जो आत्मा को परमात्मा का साक्षात्कार करा सकता है, मेरी उत्सुकता जागृति हुई। मैंने जिज्ञासु भाव से प्रश्न किया तो उन्होंने बतलाया कि हमारे प्रभुजी के नाम को जब हम अंग्रेजी में लिखते हैं तो उसका पहला अक्षर 'आर०ए०एम०एल०ए०एल०' (R.A.M.L.A.L.) बनता है। अंग्रेजी अक्षर R आर० का तात्पर्य राइट (Right) A का तात्पर्य है एक्शन ऑफ (Action of) M का तात्पर्य है मैन (Man) अर्थात् जिस किसी व्यक्ति का हर कार्य सत्य, धर्म, नीति से अनुप्राणित होता हो। यदि ऐसा पुरूष संसार में है तो वह स्वयं भगवान हो जायेगा। हमारे प्रभु हम सबके लिए साक्षात् पिता परमेश्वर ही तो हैं।

प्रभुजी के नाम के अन्तिम तीन अक्षरों में भी बड़ी विलक्षणता है। एल०ए०एल० मिलकर (Lal) बनता है अक्षर एल (L) लाइफ (Life) अर्थात् चेतन-शक्ति, प्राणशक्ति का द्योतक है। 'ए' अक्षर का तात्पर्य है एण्ड (And) से अर्थात् जीवन तत्व ही पर्याप्त नहीं है। इसके साथ कुछ और भी चाहिए और वह चाहिए एल (L) अर्थात् लाइट (Light) अर्थात् प्रकाश। जीवन में चेतना-शक्ति में तब तक प्रकाश नहीं होगा, तब तक सब कुछ व्यर्थ है। जीवन और ज्योति का मणि कंचन योग जिसके पास है उसी का जीवन सार्थक है।

प्रारम्भ में जैसा हमने चिन्तन किया था कि हम संसार के जीव दोहरा जीवन जी रहे हैं। हमारी कुछ इच्छायें हैं, आकांछायें हैं, अपक्षायें है, सुख की कल्पना करते है, मिल जाता है दुःख। हमारे एक मित्र है उनके

विवाह के बाद दस वर्ष तक पुत्र नहीं हुआ। वे जाने कितने साधु, महात्मा, ज्योतिषी, यांत्रिकी के पास गये। एक पुत्र हो जाय तो सुखी हो जायेंगे पुत्र हुआ, बड़े प्यार से पाला पोषा, शादी की। शादी के बाद लड़का अलग हो गया, अब इतने दुःखी हैं जिसकी कोई सीमा नहीं है।

वे एक संत पुरूष के पास गये, अपना दुखड़ा रोया। संत ने उनसे कहा कि जीवन रेल की पटरी नहीं है कि आगरा से चले कानपुर पहुंच गये। जीवन तो गंगा की धारा है जहाँ प्रभु ले जायें, जिस स्थिति में प्रभु रखें, प्रसन्न रहें, सही जीवन का सार है। जैसा पूज्यपाद पथिकजी महाराज का यह गीत सन्मार्गयुक्त जीवन दर्शन की ओर इङ्गि.त करता है–

सीताराम सीताराम सीताराम कहिये।
जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिये।।
मुख में हो राम नाम राम सेवा हाथ में।
तू अकेला नहीं प्यारे राम तेरे साथ में।।
विधि का विधान जान हानि लाभ सहिये।
जिंदगी की डोर सौंप हाथ दीनानाथ के।।
महलों में राख चाहे झोंपड़ी में वास दे।
धन्यवाद निर्विवाद राम राम कहिये।

यह जीवन–दर्शन है। हमारे परम पूज्य प्रभु श्री रामलालजी महाराज का भी ऐसा ही प्रसाद है। संसार में प्रारम्भ में असत्य ही विजयी होता प्रतीत होता है, किन्तु समय की गति अन्त में परास्त कर देती है। इसके विपरीत संसार के अधिकांश सत्य प्रारम्भ से पराजित रहते हुए प्रतीत होते हैं, किन्तु अन्त में सत्य की ही विजय होती है।

प्रभुजी का कथन है कि संसार में उपद्रव मन के ही हैं। समस्त समस्यायें मन की ही हैं। संसार में जितने रोगी शरीर कि रोगों का दिखलाई पड़ते हैं, उससे कई गुना ज्यादा मानसिक रोगी हैं। मन यदि स्वस्थ है तो शरीर के रोग व्यापते नहीं हैं। शरीर स्वस्थ है मन दुःखी है तो व्यक्ति ज्यादा चिंतित परेशान है।

अतः परम–पूज्य श्रद्धेय श्री गुरूदेवजी महाराज का कथ है कि योगाभ्यास करो। मन को एकाग्र करो, तभी तुम समाधि को उपलब्धि कर सकोगे। जब तक तुम मानसिक कुण्ठाओं से विमुक्त नहीं हो पाओगे तब तक बैकुण्ठ भी प्राप्त नहीं कर जाओगे। बिना अंहभाव को गिराये तो तुम श्रद्धा को भी नहीं कर सकोगे, यह अमूल्य वचन है गुरूदेव जी के।

ध्यान देने योग्य परामर्श

ईश्वर की ओर से जो कुछ भी होता है, वह मनुष्य के कल्याणार्थ होता है, किन्तु हमारा उद्देश्य केवल इतना बता देना है कि इन देवी शक्तियों का संसारिक कार्यों में प्रयोग नहीं करना चाहिए।

अपने अनुभव को दूसरों पर प्रकट करने में जहां अपनी इन शक्तियों का ह्रास होता तथा अभिमान और अहंकार का होता है।, वहाँ दूसरों के लिए भी अहितकर होगा। योग की रहस्यपूर्ण बातों को साधारण लोग समझने में असमर्थ होते हैं। परिणाम कुछ अन्ध विश्वास बनकर धोखा खाते हैं और कुछ पाखण्ड रचकर सीधे–सच्चे लोगों को धोखा देते हैं परस्पर भी एक दूसरे को अनुभव बताने में राग–द्वेष, असन्तोष और अभिमान की वृत्तियाँ उदय होकर साधना में विघ्नकारी होता है।

–योगी सीयाराम

मन के कहने में न चलना

मन के कहने में नहीं चलना चाहिए। जब कि यह मन वश में नहीं हो जाता तब तक इसे अपना शत्रु मानना चाहिए। जैसे शत्रु के प्रत्येक कार्य पर निगरानी रखनी पड़ती है वैसे ही इसके भी प्रत्येक कार्य को सावधानी से देखना चाहिए। जहाँ कहीं यह उल्टा–सीधा करने लगे, वहीं इसे धिक्करना और पछाड़ना चाहिए। मन की खातिर भूलकर भी नहीं करनी चाहिए। यद्यपि यह बड़ा बलवान है, कई बार इससे हारना होगा, पर साहस नहीं छोड़ना चाहिए। जो हिम्मत नहीं हारता वह एक दिन मन को अवश्य जीत लेता है। इससे लड़ने में एक विचित्रता है। यदि दृढ़ता से लड़ा जाए तो लड़ने वाले का बल दिनोंदिन बढ़ता है और इसका क्रमशः घटने लगता है, इसलिए इससे लड़ने वाला एक–न–एक दिन इस पर अवश्य ही विजयी होता है। अतएव इसकी हाँ–में–हाँ न मिलाकर प्रत्येक कार्य में खूब सावधानी से बर्तना चाहिए। यह मन बड़ा ही चतुर है। कभी डरावेगा, कभी फुँसलावेगा, कभी लालच देगा, बड़े–बड़े अनोखे रंग दिखलावेगा, परन्तु कभी इसके धोखों में न आना चाहिए भूलकर भी इसका विश्वास न करना चाहिए। इस प्रकार करने से इसकी हिम्मत टूट जायगी, लड़ने और धोखा देने की आदत छूट जायगी। अन्त में यह आज्ञा देने वाला न रहकर सीधा–सादा आज्ञा–पालन करने वाला विश्वासी सेवक बन जायेगा।

मन लोभी, मन लालची, मन चंचल, मन चोर।
मन के मत्त चलिए नहीं, पलक पलक मन और।।

• • •

SIDDHYOG

POSTAL Regd No: OAG-19/24-26

प्रेषण कार्यालयः

सिद्धयोग
योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ०प्र०)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री / सुश्री ____________________

____

____

गुरुर्न स स्यात् स्वजनो न स स्यात् पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्।
दैवं न तत् स्यान्न पतिश्च स स्यान्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम्॥
श्रीमद्भागवत (5/5/18)

जो अपने प्रिय सम्बन्धी को भगवत् भक्ति का सदुपदेश देकर मृत्यु की फाँसी से छुड़ा नहीं देता है, वह गुरु गुरु नहीं है स्वजन स्वजन नहीं है, माता माता नहीं है इष्टदेव इष्टदेव नहीं है और पति पति नहीं है।

संस्थापक – [illegible] मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. [illegible] शर्मा ने [illegible] सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। सम्पादक : आचार्य डॉ. (श्री) [illegible] शर्मा